12
कैसे बनता है रेडियो नाटक

इस पाठ में...

- रेडियो नाटक की परंपरा
- सिनेमा, रंगमंच और रेडियो नाटक, समानता और अंतर
- रेडियो नाटक में ध्वनि संकेतों की महत्ता
- रेडियो नाटक की अवधि और पात्र

यह एक कष्टदायक सचाई है कि एक स्वतंत्र साहित्यिक विधा के रूप में रेडियो नाटक हिंदी में अभी तक कोई जगह नहीं बना पाया है।

–नेमिचंद जैन
मशहूर रंगकर्मी एवं साहित्यकार

आज से कुछ दशक पहले एक ज़माना ऐसा भी था, जब दुनिया में न टेलीविज़न था, न कंप्यूटर। सिनेमा हॉल और थिएटर थे तो, लेकिन उनकी संख्या आज के मुकाबले काफ़ी कम होती थी और एक आदमी के लिए वे आसानी से उपलब्ध भी नहीं थे। ऐसे समय में घर में बैठे मनोरंजन का जो सबसे सस्ता और सहजता से प्राप्त साधन था, वो था–रेडियो। रेडियो पर खबरें आती थीं, ज्ञानवर्धक कार्यक्रम आते थे, खेलों का आँखों देखा हाल प्रसारित होता था, एफ़.एम. चैनलों की तरह गीत-संगीत की भरमार रहती थी। टी.वी. धारावाहिकों और टेलीफ़िल्मों की कमी को पूरा करते थे, रेडियो पर आने वाले नाटक।

हिंदी साहित्य के तमाम बड़े नाम, साहित्य रचना के साथ-साथ रेडियो स्टेशनों के लिए नाटक भी लिखते थे। उस समय ये

- *नाट्य आंदोलन के विकास में रेडियो नाटक की अहम भूमिका रही है!*
- *सिनेमा और रंगमंच की तरह रेडियो एक दृश्य माध्यम नहीं, श्रव्य माध्यम है।*
- *रेडियो की प्रस्तुति संवादों और ध्वनि प्रभावों के माध्यम से होती है।*
- *फ़िल्म की तरह रेडियो में एक्शन की गुंजाइश नहीं होती।*
- *चूँकि रेडियो नाटक की अवधि सीमित होती है इसलिए पात्रों की संख्या भी सीमित होती है क्योंकि सिर्फ़ आवाज़ के सहारे पात्रों को याद रख पाना मुश्किल होता है।*
- *पात्र संबंधी विविध जानकारी संवाद एवं ध्वनि संकेतों से उजागर होती है।*

बड़े सम्मान की बात मानी जाती थी। हिंदी व अन्य भारतीय भाषाओं के नाट्य आंदोलन के विकास में रेडियो नाटक की अहम भूमिका रही है। हिंदी के कई नाटक जो बाद में मंच पर भी बेहद कामयाब रहे, मूलतः रेडियो के लिए लिखे गए थे। धर्मवीर भारती कृत *अंधा युग* और मोहन राकेश का *आषाढ़ का एक दिन* इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं। लेकिन फिलहाल हम इस पर ध्यान देंगे कि रेडियो नाटक लिखे कैसे जाते हैं?

सिनेमा और रंगमंच की तरह रेडियो नाटक में भी चरित्र होते हैं उन चरित्रों के आपसी संवाद होते हैं और इन्हीं संवादों के ज़रिये आगे बढ़ती है कहानी। बस सिनेमा और रंगमंच की तरह रेडियो नाटक में विजुअल्स अर्थात दृश्य नहीं होते।

यही सबसे बड़ा अंतर है, रेडियो नाटक तथा सिनेमा या रंगमंच के माध्यम में। रेडियो पूरी तरह से श्रव्य माध्यम है इसीलिए रेडियो नाटक का लेखन सिनेमा व रंगमंच के लेखन से थोड़ा भिन्न भी है और थोड़ा मुश्किल भी। आपको सब कुछ संवादों और ध्वनि प्रभावों के माध्यम से संप्रेषित करना होता है। यहाँ आपकी सहायता के लिए न मंच सज्जा तथा वस्त्र सज्जा है और न ही अभिनेता के चेहरे की भाव-भंगिमाएँ। वरना बाकी सब कुछ वैसा ही है। एक कहानी, कहानी का वही ढाँचा, शुरुआत-मध्य-अंत, इसे यूँ भी कह सकते हैं, परिचय-द्वंद्व-समाधान। बस ये सब होगा आवाज़ के माध्यम से। कहानी की विस्तृत जानकारी आपको कथालेखन और नाट्यलेखन के अध्यायों से मिल ही गई होगी।

सबसे पहले बारी आती है कहानी चुनने की। कहानी आपकी मौलिक हो या चाहे किसी और स्रोत से ली हुई। उसमें निम्न बातों का ध्यान ज़रूर रखना होगा—

कहानी ऐसी न हो जो पूरी तरह से एक्शन अर्थात हरकत पर निर्भर करती हो। क्योंकि रेडियो पर बहुत ज़्यादा एक्शन सुनाना उबाऊ हो सकता है। मान लीजिए आपकी पूरी कहानी का आधार पीछा करना है। अपराधी अपराध करके भाग रहा है पुलिस उसके पीछे लगी है और बीच-बीच में दिलचस्प, नाटकीय घटनाएँ घटती हैं। अब सिनेमा में इसे बड़ी खूबसूरती से पेश किया जा सकता है, लेकिन रेडियो में ये कथानक शायद अपना पूरा असर बनाने में कामयाब न हों। क्योंकि सिर्फ़ आवाज़ों की मदद से आप अपराधी और पुलिस की भाग-दौड़ से पैदा होने वाले रोमांच का सृजन नहीं कर पाएँगे या मान लीजिए आपकी कहानी क्रिकेट या फ़ुटबाल जैसे खेल के इर्द-गिर्द बुनी हुई है, अब इस पर अच्छा सिनेमा तो बन सकता है, लेकिन रेडियो नाटक नहीं। इसलिए कहानी का चुनाव अपने माध्यम को समझते हुए करिए।

दूसरी बात, आमतौर पर रेडियो नाटक की अवधि 15 मिनट से 30 मिनट होती है। उसके दो कारण हैं, श्रव्य माध्यम में नाटक या वार्ता जैसे कार्यक्रमों के लिए मनुष्य की एकाग्रता की अवधि 15-30 मिनट ही होती है, इससे ज़्यादा नहीं। दूसरे, सिनेमा या नाटक में दर्शक अपने घरों से बाहर निकल कर किसी अन्य सार्वजनिक स्थान पर एकत्रित होते हैं इसका मतलब वो इन आयोजनों के लिए एक प्रयास करते हैं और अनजाने लोगों के एक समूह का हिस्सा बनकर प्रेक्षागृह में बैठते हैं। अंग्रेज़ी में इन्हें कैपटिव ऑडिएंस कहते हैं, अर्थात एक स्थान पर कैद किए गए दर्शक। जबकि टी.वी. या रेडियो ऐसे माध्यम हैं कि आमतौर पर इंसान अपने घर में अपनी मरज़ी से इन यंत्रों पर आ रहे कार्यक्रमों को देखता-सुनता है। सिनेमाघर या नाट्यगृह में बैठा दर्शक थोड़ा बोर हो जाएगा, लेकिन आसानी से उठ कर जाएगा नहीं। पूरे मनोयोग से जो कार्यक्रम देखने आया है, देखेगा। जबकि घर पर बैठ कर रेडियो सुननेवाला श्रोता मन उचटते ही किसी और स्टेशन के लिए सुई घुमा सकता है या उसका ध्यान कहीं और भी भटक सकता है। इसलिए अमूमन रेडियो नाटक की अवधि छोटी होती है और अगर आपकी कहानी लंबी है तो फिर वह एक धारावाहिक के रूप में पेश की जा सकती है, जिसकी हर कड़ी 15 या 30 मिनट की होगी। यहाँ एक बात और समझ लीजिए। रेडियो पर निश्चित समय पर निश्चित कार्यक्रम आते हैं, इसलिए उनकी अवधि भी निश्चित होती है 15 मिनट, 30 मिनट, 45 मिनट, 60 मिनट वगैरह।

अब क्योंकि आपके रेडियो नाटक की अवधि ही सीमित है—तो फिर अपने-आप ही पात्रों की संख्या भी सीमित हो जाएगी। क्योंकि श्रोता सिर्फ़ आवाज़ के सहारे चरित्रों को याद रख पाता है, ऐसी स्थिति में रेडियो नाटक में यदि बहुत ज़्यादा किरदार हैं तो उनके साथ एक रिश्ता बनाए रखने में श्रोता को दिक्कत होगी। अगर संख्याओं में बात करनी है तो हम इस प्रकार कह सकते हैं, 15 मिनट की अवधि वाले रेडियो नाटक में पात्रों की अधिकतम संख्या 5-6 हो सकती है। 30-40 मिनट की अवधि के नाटक में 8 से 12 पात्र। अगर एक घंटे या उससे ज़्यादा अवधि का रेडियो नाटक लिखना ही पड़ जाए, तो उसमें 15 से 20 भूमिकाएँ गढ़ी जा सकती हैं। पात्रों की संख्या के मामले में दो संकेत और उपरोक्त बताई गईं संख्याएँ एक अंदाज़ा मात्र हैं। अर्थात 15 मिनट के रेडियो नाटक में अगर ज़रूरत है तो 7 या 8 किरदार भी हो सकते हैं। लेकिन यह संख्या बहुत ज़्यादा बढ़ाई, तो जैसा पहले ही कहा था श्रोता के लिए मुसीबत उठ खड़ी हो सकती है। दूसरे, हम जब इन संख्याओं की बात कर रहे हैं, तो ये प्रमुख और सहायक भूमिकाओं की संख्या है। छोटे-मोटे किरदारों की गिनती इसमें नहीं की गई है। मतलब, फेरीवाले की एक आवाज़ या पोस्टमैन का एक संवाद या न्यायालय में जज का सिर्फ़ 'ऑर्डर-ऑर्डर' कहना आदि।

तो हमने देखा कि रेडियो नाटक के लिए कहानी का चुनाव करते समय हमें तीन मुख्य बातों का खयाल रखना है—कहानी सिर्फ़ घटना प्रधान न हो, उसकी अवधि बहुत ज़्यादा न हो (धारावाहिक की बात दीगर है) तथा पात्रों की संख्या सीमित हो।

अब आती है बारी रेडियो नाटक लिखने की। जैसा कि पहले भी ज़िक्र हुआ था, मंच का नाट्यालेख, फ़िल्म की पटकथा और रेडियो नाट्यलेखन में काफ़ी समानता है। सबसे बड़ा फ़र्क यही है कि इसमें दृश्य गायब है, उसका निर्माण भी ध्वनि प्रभावों और संवादों के ज़रिये करना होगा। यहाँ एक बात और समझ लीजिए, ध्वनि प्रभाव में संगीत भी शामिल है। अपनी बात को और बेहतर ढंग से समझने के लिए एक उदाहरण की मदद लेते हैं। मान लीजिए दृश्य कुछ इस प्रकार का है, रात का समय है और जंगल में तीन बच्चे, राम, श्याम और मोहन रास्ता भटक गए हैं। फ़िल्म या मंच पर इसे प्रकाश, लोकेशन/मंच सज्जा, ध्वनि प्रभावों और अभिनेताओं की भाव-भंगिमाओं से दिखाया जा सकता था। रेडियो के लिए इसका लेखन कुछ इस प्रकार होगा।

कट-1 या पहला हिस्सा

(जंगली जानवरों की आवाज़ें, डरावना संगीत, पदचाप का स्वर)

राम	:	*श्याम, मुझे बड़ा डर लग रहा है, कितना भयानक जंगल है।*
श्याम	:	*डर तो मुझे भी लग रहा है राम! इत्ती रात हो गई घर में अम्मा-बाबू सब परेशान होंगे!*
राम	:	*ये सब इस नालायक मोहन की वजह से हुआ। (मोहन की नकल करते हुए) जंगल से चलते हैं, मुझे एक छोटा रास्ता मालूम है...*
श्याम	:	*(चौंककर) अरे! मोहन कहाँ रह गया? अभी तो यहीं था! (आवाज़ लगाकर) मोहन! मोहन!*
राम	:	*(लगभग रोते हुए) हम कभी घर नहीं पहुँच पाएँगे...*
श्याम	:	*चुप करो! (आवाज़ लगाते हुए) मोहन! अरे मोहन हो!*

मोहन	:	*(दूर से नज़दीक आती आवाज़) आ रहा हूँ! वहीं रुकना! पैर में काँटा चुभ गया था। (नज़दीक ही कोई पक्षी पंख फड़फड़ाता भयानक स्वर करता उड़ जाता है।) (राम चीख पड़ता है।)*
राम	:	*श्याम, बचाओ!*
मोहन	:	*(जो नज़दीक आ चुका है।) डरपोक कहीं का।*
राम	:	*(डरे स्वर में) वो... वो... क्या था?*
मोहन	:	*कोई चिड़िया थी। हम लोगों की आवाज़ों से वो खुद डर गई थी। एक नंबर के डरपोक हो तुम दोनों।*
श्याम	:	*मोहन रास्ता भटका दिया, अब बहादुरी दिखा रहा है...*

ये दृश्य इसी तरह चलेगा। आपने गौर किया होगा, शुरू में हमने अंक या दृश्य की जगह कट/हिस्सा लिखा है। दरअसल रेडियो नाटक में दृश्य नहीं होता, इसीलिए उसकी बजाय अंग्रेज़ी शब्द 'कट' लिखने की परिपाटी है। वैसे ये इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, आप अलग-अलग दृश्यों या हिस्सों को अपने तरीके से दर्शा सकते हैं। महत्त्वपूर्ण हैं–संवाद और ध्वनि प्रभाव। हमने शुरू में ही ध्वनि प्रभावों से जंगल या किसी खुली जगह का संकेत दे दिया है, फिर राम भी अपने संवाद में कहता है–कितना भयानक जंगल है। अर्थात ये लोग इस समय जंगल में हैं ये बात श्रोता को मालूम हो गई है, अब श्याम अपने अगले संवाद में–इत्ती रात हो गई अर्थात स्थान–जंगल, समय–रात। अगर हमें समय और ज़्यादा स्पष्ट करना है, तो श्याम का संवाद कुछ इस प्रकार हो सकता था–रात के बारह बज गए हैं, घर में अम्मा-बाबू सब परेशान होंगे। तात्पर्य यह है कि आप संवादों के द्वारा दृश्य का देशकाल स्थापित कर सकते हैं, बस शर्त यह है कि वो स्वाभाविक होना चाहिए, ज़बरदस्ती ठूँसा हुआ न लगे। मसलन श्याम अगर ये संवाद कहें–राम, रात के बारह बजे हैं और मुझे डर लग रहा है। साफ़ दिखाई देता है कि मात्र सूचना देने के अंदाज़ में संवाद लिखा गया है।

हम आगे देखते हैं कि दृश्य हमें और क्या-क्या जानकारी दे रहा है–तीन दोस्त हैं राम, श्याम और मोहन। तीनों कहीं से वापस घर आ रहे थे। मोहन ने सुझाव दिया कि उसे जंगल से होकर जानेवाला कोई छोटा रास्ता पता है। तीनों ने जल्दी घर पहुँचने की ललक में वो राह पकड़ ली और अब भटक गए हैं। हमें यह भी पता चलता है कि सबसे ज़्यादा डरा हुआ राम है, डर श्याम को भी लग रहा है, लेकिन वो उस पर काबू करने की कोशिश कर रहा है। तीनों में सबसे बेफ़िक्र मोहन है।

रेडियो नाटक में पात्रों संबंधी तमाम जानकारी हमें संवादों के माध्यम से ही मिलती हैं। उनके नाम, आपसी संबंध, चारित्रिक विशेषताएँ, ये सभी हमें संवादों द्वारा ही उजागर करना होता है। भाषा पर भी आपको विशेष ध्यान रखना होगा। वो पढ़ा-लिखा है कि अनपढ़, शहर का है कि गाँव का, क्या वो किसी विशेष प्रांत का है, उसकी उम्र क्या है, वो क्या रोज़गार-धंधा करता है। इस तरह की तमाम जानकारियाँ उस चरित्र की भाषा को निर्धारित करेंगी। फिर पात्रों का आपसी संबंध भी संवाद की बनावट पर असर डालता है। एक ही व्यक्ति अपनी पत्नी से अलग ढंग से बात करेगा, अपने नौकर से अलग ढंग से, आपने बॉस के प्रति सम्मानपूर्वक रवैया अपनाएगा, तो अपने मित्र

के प्रति उसका बराबरी और गरम-जोशी का व्यवहार होगा। ये सब प्रकट होगा उसके संवादों से। यूँ तो ये सब कुछ फ़िल्म और मंच के लिए लिखे गए संवादों पर भी लागू होता है, लेकिन रेडियो क्योंकि मूलत: संवाद प्रधान माध्यम है, इसलिए यहाँ इसका खास ध्यान रखना होता है। संवाद से ही संबंधित एक तथ्य और है और ये विशेषकर रेडियो नाटक पर ही लागू होता है। क्योंकि रेडियो में कौन किससे बात कर रहा है, हम देख नहीं पाते इसलिए संवाद जिस चरित्र को संबोधित है, उसका नाम लेना ज़रूरी होता है, खासतौर पर जब दृश्यों में दो से अधिक पात्र हों। इसके अलावा रेडियो नाटक में कई बार कोई पात्र विशेष जब कोई हरकत, कोई एक्शन करता है तो उसे भी संवाद का हिस्सा बनाना पड़ता है। उदाहरण के लिए हमारा चरित्र पार्क में है और उसे बेंच पर बैठना है तो उसका संवाद कुछ इस तरह का होगा–**कितनी गरमी है आज पार्क में। चलूँ कुछ देर इस बेंच पर बैठ जाऊँ**। (और वो आह की ध्वनि करता बेंच पर बैठ जाता है।)

उपरोक्त लिखी बातों को और बेहतर ढंग से समझने के लिए हम जगदीश चंद्र माथुर जी के नाटक के एक अंश को रेडियो नाटक में रूपांतरित करते हैं।

(हास्य भाव को पेश करने वाला संगीत। संगीत मद्धम पड़ता है। अधेड़ उम्र के बाबू रामस्वरूप का स्वर उभरता है।)

बाबू : *अबे धीरे-धीरे चल... (लकड़ी के तख्त की दीवार से टकराने की आवाज़।)*

बाबू : *अरे-अरे एक तख्त बिछाने में ड्राइंगरूम की सारी दीवारें तोड़ेगा क्या?... अब तख्त को उधर मोड़ दे... अरे उधर... बस, बस!*

नौकर : *बिछा दूँ साहब?*

बाबू : *(तेज़ स्वर में) और क्या करेगा? परमात्मा के यहाँ अक्ल बँट रही थी तो तू देर से पहुँचा था क्या? (नकल करते हुए)... बिछा दूँ साब!... और ये पसीना किसलिए बहाया है?*

(तख्त को ज़मीन पर रखने का ध्वनि प्रभाव, साथ ही नौकर की हँसी का स्वर।)

नौकर : *ही-ही-ही-ही।*

बाबू : *हँसता क्यों है? अबे हमने भी जवानी में कसरतें की हैं, कलसों से नहाता था लोटों की तरह। ये तख्त क्या चीज़ है? अच्छा सुन रतन, भीतर जा और बहू जी से दरी माँग ला, इसके ऊपर बिछाने के लिए।*

रतन : *जी साब!*

बाबू : *(थोड़ा स्वर बढ़ाकर, मानो पीछे से आवाज़ दे रहे हों।) और चद्दर भी, कल जो धोबी के यहाँ से आई है, वही!*

रतन : *(मानो दूर से ही जवाब दे रहा हो) जी साब!*

(बाबू रामस्वरूप कोई भजन गुनगुनाते हैं, शायद 'दर्शन दो घनश्याम, नाथ मोरी आखियाँ प्यासी हैं' फिर स्वयं से कहते हैं।)

बाबू	:	*ओहो, एकदम नालायक है ये रतन... देखो कैसी धूल जमी है, कुर्सियों पर... ये गुलदस्ता भी, जैसे बाबा आदम के ज़माने से साफ़ नहीं हुआ है क्या सोचेंगे लड़के वाले... ओफ़्फ़ोह अब ये झाड़न भी गायब है, अभी तो यहीं था... हाँ ये रहा (कपड़े के झाड़न से कुर्सी साफ़ करने की आवाज़ के साथ-साथ बाबूजी का एकालाप जारी रहता है।)*
बाबू	:	*आज ये लोग उमा को देख कर चले जाएँ... फिर खबर लेता हूँ... श्रीमती जी की भी... और इस गधे रतन की भी...(चौंक कर) ये क्या दोनों इधर ही आ रहे हैं...रतन खाली हाथ!*
प्रेमा	:	*(गुस्से में) मैं कहती हूँ तुम्हे इस वक्त धोती की क्या ज़रूरत पड़ गई। एक तो वैसे ही जल्दी-जल्दी में...*
बाबू	:	*(आश्चर्य से) धोती!*
प्रेमा	:	*हाँ, अभी तो बदलकर आए हो...*
बाबू	:	*लेकिन तुमसे धोती माँगी किसने?*
प्रेमा	:	*यही तो कह रहा था रतन।*
बाबू	:	*क्यों बे रतन, तेरे कानों में डॉट लगी है क्या? मैंने कहा था—धोबी! धोबी के यहाँ से जो चादर आई है, उसे माँग ला... अब तेरे लिए दूसरा दिमाग कहाँ से लाऊँ। उल्लू कहीं का।*
प्रेमा	:	*अच्छा, जा पूजा वाली कोठरी में लकड़ी के बक्स के ऊपर धुले कपड़े रखे हैं न, उन्हीं में से एक चादर उठा ला।*
रतन	:	*और दरी बीबी जी?*
प्रेमा	:	*दरी यहीं तो रखी है, कोने में... वो पड़ी तो है।*
बाबू	:	*दरी हम उठा लेंगे, तू चादर ले कर आ और सुन बीबी जी के कमरे से हारमोनियम भी लेते आना।... अब जल्दी जा।*
रतन	:	*जी साब!*
बाबू	:	*आओ तब तक हम दोनों दरी बिछा देते हैं... ज़रा पकड़ो उधर से इसे एक बार झटक देते हैं* *(दरी के झटकने का स्वर। बाबू जी के खाँसने का स्वर।)*
बाबू	:	*(खाँसते-खाँसते) ओ...हो... कितनी गर्द भरी है इस दरी में*

ये दृश्य इसी तरह चलता रहेगा। अब देखा जाए तो नाटक के आलेख, और रेडियो के आलेख में कोई खास फ़र्क नज़र नहीं आएगा। लेकिन कुछ छोटे-छोटे अंतर हैं, और यही अंतर रेडियो नाटक के लिए काफ़ी महत्त्वपूर्ण बन जाते हैं। हम बताएँ, इससे बेहतर होगा आप स्वयं ही दोनों दृश्यों की तुलना कीजिए और दोनों आलेखों में क्या-क्या अंतर हैं, उन्हें खोजिए। ये भी समझने की कोशिश कीजिए कि ये अंतर क्यों हैं?

अभ्यास

पाठ से संवाद

1. दृश्य-श्रव्य माध्यमों की तुलना में श्रव्य माध्यम की क्या सीमाएँ हैं? इन सीमाओं को किस तरह पूरा किया जा सकता है?

2. नीचे कुछ दृश्य दिए गए हैं। रेडियो नाटक में इन दृश्यों को आप किस-किस तरह से प्रस्तुत करेंगे, विवरण दीजिए।
   (क) घनी अँधेरी रात
   (ख) सुबह का समय
   (ग) बच्चों की खुशी
   (घ) नदी का किनारा
   (ङ) वर्षा का दिन

3. रेडियो नाटक लेखन का प्रारूप बनाइए और अपनी पुस्तक की किसी कहानी के एक अंश को रेडियो नाटक में रूपांतरित कीजिए।